टूटा हुआ आदमी

टूटा हुआ आदमी

(काव्य-संग्रह)

सिद्धनाथ कुमार

दिल्ली पुस्तक सदन
दिल्ली :: पटना

प्रकाशक
पुस्तक मंदिर, बक्सर की ओर से
दिल्ली पुस्तक सदन
दिल्ली : : पटना

प्रथमावृत्ति
१९५८

मूल्य
तीन रुपए मात्र

मुद्रक
ज्ञानपीठ प्राइवेट लि०,
पटना-४

अपने भैया
श्री मंगलचरण को
सादर

प्राक्कथन

'टूटा हुआ आदमी' इस पुस्तक का नाम है, यद्यपि इस शीर्षक की कविता तथा इस पूरे संग्रह का मुख्य स्वर है—'टूटा हुआ आदमी भी चलता है !'

इस संग्रह में सन् १६५० से ले कर अब तक की मेरी कुछ चुनी हुई कविताएँ आयी हैं। ये कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपीं, और इनमें से कुछ की चर्चा नयी कविता-संबंधी समीक्षात्मक निबंधों में हुई, अब ये संगृहीत रूप में आपके सम्मुख हैं। आप इनका रसास्वादन करें।

आप चाहें, तो इन कविताओं को नयी कविता के अंतर्गत भी गिन सकते हैं, प्रयोगशील या प्रयोगवादी भी कह सकते हैं, लेकिन मैं अपनी बात कहूँ, तो मैंने नयी कविता या प्रयोग को ध्यान में रख कर इन्हें नहीं लिखा। मुझे लगता है, प्रयोग किये नहीं जाते, होते हैं। सभी क्षेत्रों में सदा से प्रयोग होते आये हैं। काव्य का क्षेत्र भी अपवाद नहीं। कविता जीवन के रागात्मक सत्यों की अभिव्यक्ति है, और जीवन का क्षेत्र, उसका वातावरण प्रत्येक युग में बदलता रहा है। काल-परिवर्त्तन के साथ ही राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि व्यवस्थाएँ बदलती हैं, धारणाएँ बदलती हैं, विश्वास बदलते हैं, मान्यताओं में परिवर्त्तन होते हैं, नवीन भावनाओं और नवीन कल्पनाओं का उदय होता है। और, जागरूक काव्य इन परिवर्त्तनों के साथ चलता है। इसके लिए वह सहज भाव से प्रयोगों की शरण लेता है और नवीन उद्भावनाओं की सृष्टि करता है। मेरी इन कविताओं में क्या है, यह आप देखें; मुझे केवल यह कहना है कि जिस युग में हूँ, उसी में मैंने जीवित रहने का प्रयत्न किया है। मुझे जो अनुभूतियाँ इस युग-जीवन से मिली हैं, उन्हें मैंने उसी की सामान्य भाषा में, उसी के सामान्य चित्रों में, उसी की गति और लय में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। आलोचक ब्रेडले के अनुसार, यदि किसी कविता को कुछ महान् होना है, तो

एक प्रकार से उसका संबंध वर्त्तमान से होना चाहिए, उसका विषय कुछ भी हो, उसमें उस 'कुछ' की अभिव्यक्ति होनी चाहिए, जो एक साथ ही उसके स्रष्टा कलाकार और उसके उपभोक्ता सहृदयों के मन में जीवित हो। मेरे स्रष्टा के मन का जीवित सत्य इन कविताओं में अभिव्यक्त है, आप देखें कि आप सहृदयों के मन में भी क्या वह कहीं वर्त्तमान है ?

आॅल इंडिया रेडियो,
पटना,
१ मई १९५८

सिद्धनाथ कुमार

अनुक्रम

टूटा हुआ आदमी

आगत

क्या अनागत का हिमालय
बुझा पाएगा तुम्हारी प्यास ?
सिंधु खारा विगत का लहरा रहा,
क्या तृप्ति देगा ?
जीव प्यासे,
आँख अपनी खोल देखो जाह्नवी को,
सामने ही तो तुम्हारे बह रही है !

छोड़ो भी तुकों को

"किस्मत फूटती है!
ज़िन्दगी टूटती है!
.... ?'
छोड़ो भी तुकों को,
जो कहना है, कहो वही!

स्वप्नों का निर्माता

कोहनी टिकाये थकी मेज़ पर
शीश झुकाये हाथों पर
क्यों अपनी पलकों में
अपने ही डूब रहा ?
कुछ सपने टूट गये शायद !
रंगीन कांच के टुकड़ों - से
खिड़की के बाहर फेंक उन्हें।
स्मृतियों के बच्चे आ कर उनको चुन लेंगे।
हैं स्वप्न टूटते, उन्हें टूटता जाने दे,
लेकिन रख इतना ध्यान,
न अपने टूट कभी।
तू नहीं स्वप्न की निर्मिति,
तू निर्माता है।
तू बना रहा,
तो कितने स्वप्न बना लेगा !

ओ कलाकार !

ओ कलाकार,
यदि और न कुछ
तुम कर सकते,
स्वप्नों का ही निर्माण करो !

युग अस्त-व्यस्त हो रहा आज !
मानवता के खंडहर में हैं
फूत्कार कर रहीं ज्वालाएँ !
इन ज्वालाओं के बीच खड़े
तुम रचा करो सपने मनहर,
पर ऐसे स्वप्न नहीं,
जिनमें अंतर की
दुर्बलताएँ जागें, मुस्काएँ,
पर ऐसे स्वप्न नहीं,
जिनमें इच्छाओं के शव पर
बनता हो ताजमहल उज्ज्वल ;
पर ऐसे स्वप्न नहीं,
जिनके वृंदावन में,
कुंजों में, यमुना के तट पर
खेलें खुल कर
वंदिनी वासनाएँ उर की !

ओ कलाकार!
उन स्वप्नों का निर्माण करो,
जिनकी रेखाओं में
हो जाग रहा जीवन,
जिनमें अगणित निर्माणों के
संसार मचलते हों अभिनव!

ओ कलाकार,
उन स्वप्नों का निर्माण करो,
जो चरणों को गति दें,
अंतर को नयी शक्ति,
विश्वास नया,
जो पलकों से हाथों पर,
हाथों से आ कर
भू पर उतरें!
संसार माँगता है
ऐसे ही स्वप्न आज,
इसलिए कि स्वप्नों के ऊपर
निर्माण हमेशा होता है!

ओ कलाकार,
यदि और न कुछ
तुम कर सकते,
जीवन की सारी शक्ति लगा
स्वप्नों का ही निर्माण करो!

यह जीवन क्या है....

झूठ कहते हो तुम!
जीवन है नदी नहीं, निर्झर नहीं!
यह तो सायकिल है,
या कार है, यान है।
स्वयं ही चलता नहीं,
पड़ता है चलाना इसे।
छोड़ दूँ चलने को अपने ही इसे अगर,
कोई दुर्घटना निश्चय ही हो जाएगी!

भूखे भजन...

कौन ?'
'कविता।'
धत् तेरे की!
क्या मेरे पीछे पड़ी है!
और कहीं जा,
जहाँ फुर्सत है, पैसे हैं, सुख है, आराम है!
यहाँ तो अपनी ही ज़िन्दगी के लाले हैं!'

साधन नहीं, शक्ति माँग

क्या कहा ?
भूखा है ? प्यासा है ?
दर - दर का मारा है ?
शरण चाहिए तुझको ?
अन्न - जल चाहिए ?

एक बात पूछूँ मैं ?
कब से तू भटक रहा !
कब से तू माँग रहा !
क्या न कहीं शरण मिली ?
क्या न मिला अन्न - जल ?
फिर भी तू
दर - दर है भटक रहा !
फिर भी स्वर हारा है !
फिर भी है आँखों में
रोशनी नहीं आयी !

पगले,
तू भूला है ।
जीना चाहता है यदि सचमुच तू,

साधन नहीं, शक्ति माँग !
शक्ति से साधन मिल जाएँगे,
साधन, किंतु, शक्ति नहीं
तुझको दे पाएँगे !

मैं तो कवि हूँ !

बादल आकाश में छाएँ या न छाएँ,
मैं तो कवि हूँ, मैं गाऊँगा—
घिर - घिर आये बादरा !

क्या कहा ?
ताकते-ताकते सूने आकाश को
आँखें पथरायी हैं !
बादल नहीं आये हैं !
पानी नहीं बरसा है !
सूरज लुटेरे ने
लूट ली है खेतों की सम्पदा !
धरती की छाती है दरक गयी !
तो, मेरा क्या ?
मैं तो कवि हूँ,
मैं मेघों के गीत गाया हूँ,
आज भी गाऊँगा—
घिर - घिर आये बादरा !

यह मत समझो,
मैं कल्पना-लोक का वासी हूँ

घूमता रहा होऊँ कभी आकाश में,
अब तो उतर आया हूँ
जीवन की धरती पर।
देखो, मेरे शब्दों को देखो,
मेरे छंदों को सुनो।
क्या मेरे शब्द जन-जीवन के नहीं?
क्या मेरे छंदों में
लोकगीतों की धुनें नहीं आयी हैं?
मैं तो जन-जीवन का कवि हूँ,
जन-जीवन के स्वर में ही गाता हूँ—
घिर-घिर आये बादरा!

यह मत समझो,
मैं मेघों के गीत गा
परम्परा निभाता हूँ।
मैं गाड़ी नहीं हूँ,
कपूत भी नहीं हूँ मैं।
मैं तो कवि हूँ!
परम्परा की लीक छोड़ चलता हूँ!
प्रतिक्षण प्रयोग नया करता हूँ!
मेघों को नये-नये रूपों में देखता हूँ,
नयी-नयी उपमाएँ रचता हूँ,
नये-नये चित्रों से पंक्तियाँ सजाता हूँ!
मेरी दृष्टि वहाँ भी जाती है,
जहाँ रवि की किरणें भी
पहुँच नहीं पाती हैं!

मुझको तो सूने आकाश में भी
कारे-कारे मतवारे बादर नज़र आते हैं—
मस्ती में झूमते-से !
मुझको तो सूना आकाश भी
श्यामल कुंजों-सा लगता है,
जिनमें लहराती हैं रह-रह कर
सतरंगी इन्द्रधनुषी ओढ़नियाँ !
धूल औ' पसीने से सने
होरी - गोबर को
दीखता है सारा आकाश यदि
उजड़ा, वीरान उनके भाग्य-सा,
तो मेरा क्या ?
मैं तो कवि हूँ,
मैं गाता हूँ—
श्याम कुंज में उड़ी चुनरिया,
बादर आये ना !
घिर - घिर आये बादरा !

मेरे इन गीतों को
खेतों-खलिहानों में
गाये कोई या न गाये,
रेडियो, फिल्मों के
लोकप्रिय कलाकार गाएँगे—
नये-नये तर्ज़ों में,
नयी-नयी धुनों में,
आकर्षक, मनभावन ।

गलियों-बाज़ारों में
बच्चे भी जिनको दुहराएँगे।
मेरे इन गीतों को
मेरे साहित्यिक मित्र
पढ़ेंगे खूब चाव से पत्रों में।
(मैं भी तो उनकी रचनाओं को पढ़ता हूँ !)

सूरज आकाश में दहके, आग बरसाये,
खेतों के नन्हें सुकुमार हरे पौधे मुरझा जायें,
होरी के सपने सब राख हो बिखर जायें,
किंतु मेरा गीत तो दिशि-दिशि में गूँजेगा—
घिर - घिर आये बादरा !

प्रतिक्रिया

(एक)

तुमने ठोकर मारी, मैंने अनुभव पाये,
पत्थर टकराये, मुझको रसमय गान मिले !
मैं तो वह उर्वर मिट्टी लाया हूँ, जिसमें
जो सूखे बीज गिरे, वे अंकुर बन निकले !

(दो)

धन्यवाद !
ठोकर मारनेवाले,
धन्यवाद मेरा स्वीकार करो !
ठोकर मारी तुमने,
चिनगारी फूट पड़ी।
मुझको यह ज्ञात हुआ,
मुझमें भी ज्वाला है।
कितना कृतज्ञ हूँ तुम्हारा मैं !

आत्मा अमर है !

हे भगवान् कृष्ण !
आपने यह क्या कह दिया है
कि आत्मा अमर है !
कि शस्त्रादि इसे काट नहीं सकते हैं !
कि आग इसे जला नहीं सकती है !
कि जल इसे भिगा नहीं सकता है !
कि हवा इसे सुखा नहीं सकती है !

मैं तो यहाँ देखता हूँ,
दो बार लंबी साँस खींच कर
आत्मा प्राण त्याग देती है !
लौह अस्त्र-शस्त्रों की बात क्या,
चाँदी के ठीकरों की चोट से
आत्मा क्षत-विक्षत हो जाती है !
प्यास का चुल्लू भर पानी
इसे भिगाता ही नहीं,
बल्कि पूरा डुबो लेता है !
स्वार्थ की हल्की-सी हवा भी
इसको सुखाती है,
तिनके-सा संग-संग अपने उड़ाती है !

हे भगवान् कृष्ण !
आपने यह क्या कह दिया है
कि आत्मा अमर है,
अच्छेद्य है, अदाह्य है,
अक्लेद्य है, अशोष्य है !
शायद आपने द्वापर में कहा था !
काश, आज होते आप !

प्रेरणा मर गयी

क्या कहा ?
मर गयी प्रेरणा ?
अच्छा हुआ !
बड़ी शैतान थी !
अपनी ही मर्ज़ी से
आती थी, जाती थी ।
मेरी सिफारिशों की,
आरज़ू-मिन्नतों की,
मेरे अरमानों की,
मेरी ख्वाहिशों की
थी उसको परवाह नहीं !
अच्छा हुआ,
नहीं रही !

अब मैं बैठूँगा
किसी के आसरे नहीं ।
लिखूँगा, खूब लिखूँगा धड़ल्ले से
कविताएँ, नाटक, कहानियाँ,
तरह-तरह की रचनाएँ,

भिन्न-भिन्न पत्रों के
आदर्श-उद्देश्य देख-देख,
जिससे वे सभी कहीं
स्वीकृत-समादृत हों !
(पैसे भी तभी तो मिलेंगे अधिक !)
बड़ी शैतान थी प्रेरणा !
अपनी ही इच्छाओं,
अपने आदर्शों को
सब पर थी लादना चाहती !
अच्छा हुआ,
चली गयी !

क्या यही वसंत है?

मन की टहनी में
स्मृतियों की कोंपलें उग ग्रायो हैं!
क्या यही वसंत है ?

सुनता हूँ, वसंत ग्राया है !
ग्राया होगा,
पर मैं उसको पहचान नहीं पाता हूँ।
मैं तो शहरों में रहता ग्राया हूँ,
मैंने वसंत को
स्वच्छंद हो मुखरित होते नहीं देखा है।
मैंने नहीं देखा है,
कूलन में, केलि में,
कछारन में, कुंजन में
कलियाँ कैसे किलकती हैं।
मैंने नहीं देखा है,
बीथिन में, बेलिन में,
बनन में, बागन में
वसंत कैसे बगरता है।
मैंने नहीं देखा है,

वन-वन में नयी-नयी हरियाली
कैसे अँगड़ाई लेती है !
मैंने नहीं देखा है,
सरसों की वासंती चुनरी
कैसे लहराती है ।
मैंने नहीं देखा है
ऐसा हो बहुत कुछ,
जिसके बारे में पढ़ा है,
जो वसंत में हर साल होता है ।
लेकिन,
यह हल्की-सी हवा छू गयी कैसी !
मन, ना जाने, आज
कैसा-कैसा हो आया है !
अनदेखे बाणों से बिंध कर
दर्द फिर से अकुलाया है !
दूर की अमराई से
जानी-पहचानी आवाज़ ने पुकारा है !
फाइल, कागज़-पत्रों को
इधर-उधर फेंक सहसा
मन खिड़की से बाहर हो आया है !
लगता है,
क्षण भर में जादू हो आया है !
बाहर दरवाजे के,
क्यारियों-लताओं में
फूल खिल आये हैं !

ग्रौर,
मन की टहनी में
स्मृतियों की कोंपलें उग ग्रायी हैं!
क्या यही वसंत है ?

ज्योत्स्ना-जाह्नवी

हिम-श्वेत पर्वताकार
बादलों के ऊपर
पश्चिमी क्षितिज पर चाँद उगा !
चाँदनी-नदी की शुभ्र धार,
लो, बह निकली,
ज्यों गंगोत्री से फूट
जाह्नवी कल्याणी
चल पड़ी
सगर-पुत्रों को
(जो दिन के अभिशापों से
जल कर हो राख धरा पर बिखरे हैं)
ज़िन्दा करने !

संघर्ष के क्षणों में

[एक]

भभकती है लौ,
लेकिन रोशनी नहीं होती,
चारों ओर गहरा घुप अंधकार छाया है !
लगता है,
बत्ती जल खाक़ हो जाएगी,
और,
मन मेरा उफ़, सहसा चिटख़ जाएगा !

[दो]

बढ़ रहा शीत का अंधकार,
हैं ठिठुर रहीं तेरी साँसें !
जीवन - आकांक्षी, हार न तू,
साहस बटोर, कुछ और सुलग !

[तीन]

एक शह और पड़ी !
ज़िन्दगी पर क्षण-क्षण

शह पड़ती है,
पड़ने दो !
शक्ति भर बचूँगा मैं !
फिर भी हार जाऊँ,
तो हार नहीं मानूँगा !

[चार]

क्या कहा ?
हार हो गयी मेरी ?
स्वत्व छिन गया मेरा ?
परिषद् विरुद्ध है ?
मेरा इस दुनिया में
कोई सहायक नहीं ?
सत्य है,
किंतु मत भूलो यह:
मेरे विश्वास का
निषेधाधिकार अभी बाक़ी है !

दिन के सपने

ये दिन के सपने
कितने नटखट होते हैं !
जब कभी तनिक भी
मेरी आँखें मुँदती हैं,
सड़कों पर किलकारी भरते,
हँसते-गाते
खेलने तुरत लग जाते हैं !
पर जैसे ही आँखें खुलतीं,
छिप जाते हैं सब इधर-उधर,
मैं कहीं न उनके कान उमेठूँ,
पीटूँ गुस्से में आ कर !
आखिर तो ये बीसवीं सदी के बच्चे हैं !

विदा के क्षण

[एक]

है ज्ञात, मिलन-क्षण आएँगे फिर भी, लेकिन
ना जाने, मन को क्या हो जाया करता है!
हर बिछुड़न की बेला में हृदय मचलता है,
हर बिछुड़न की बेला में दर्द उभरता है!

[दो]

ट्रेन की सिसकी, घुटन, उच्छ्‌वास,
विकल जैसे हो उठे हों प्राण!
क्षीण भर्रायी हुई आवाज़!
करुण सीटी दर्द की! प्रस्थान!

[तीन]

विदा का क्षण! प्राण उद्वेलित, अधर हैं मौन!
घुमड़ता है भावनाओं का प्रबल आवेश!
क्या कहूँ, सब कह चुका हूँ मिलन के क्षण में,
किंतु, फिर भी लग रहा, कुछ रह गया है शेष!

[चार]

विदा का क्षण ! झुकीं पलकें अश्रुओं से सिक्त !
सिसकियों में प्राण की वाणी रही अवरुद्ध !
शब्द जो कुछ कह न पाये तड़प कर के भी,
कह गया वह उँगलियों का एक नन्हा स्पर्श !

[पाँच]

उस छोटे-से क्षण में सहसा सीखा मैंने,
आँसू की बूँदों में भी गर्मी होती है !
दो बिंदु तुम्हारी आँखों से छलके केवल,
मेरा सारा अभिमान मोम-सा पिघल गया !

[छः]

विदा के क्षण में
तुम्हारे छलछलाये नयन
मैंने देख कर समझा—
आँसुओं में भी मधुर मुस्कान होती है !

ज़िन्दगी मुश्किल है !

[एक]

चाहो, तो नाम कमा सकते हो,
चाहो, तो दाम कमा सकते हो,
दुनिया में सब कुछ आसान है,
एक ज़रा मुश्किल है जीना ही !

[दो]

ज़िन्दगी मुश्किल है,
मुझसे उफ, जी नहीं जाती है !
जाने, किस मर्ज़ की दवा है यह,
मुझसे तो पी नहीं जाती है !
घूँट तीखा है,
किंतु, फिर भी इसे पीता हूँ !
जीत ज़िन्दगी की हो,
इसीलिए जीता हूँ !

प्रयोग

ठहरो जी, ठहरो
मैं प्रयोग कर रहा हूँ अभी !

देखते नहीं हो क्या ?
कविता खतरे में है !
संवेदनाएँ सब उलझ-उलझ
गले में अँटकी हैं !
कविता बेचैन है !
साँस घुट रही उसकी !
भाषा के नये औजार मुझे गढ़ने हैं,
जो सब संवेगों को बाहर निकाल सकें !
कविता के प्राणों की
रक्षा करनी है मुझे !
ठहरो जी, ठहरो,
मैं प्रयोग कर रहा हूँ अभी !

देखते नहीं हो क्या ?
जीवन खतरे में है !

इसकी रक्षा के लिए
नया फार्मूला मुझे गढ़ना है।
(पुराने बेकार हो गये हैं सभी !)
भलाई-बुराई का,
झूठ और सच का
स्वार्थ-परमार्थ का
अनुपात ठीक करना है !
नये-नये सत्यों को खोजना है !
जीवन को खतरे से
आज़ाद करना है !
अभी अपनी बातों में
मुझको उलझाओ मत ।
ठहरो जी, ठहरो,
मैं प्रयोग कर रहा हूँ अभी !

देखते नहीं हो क्या ?
दुनिया खतरे में है !
मालूम होता है,
दुनिया में शांति का राज्य हो जाएगा !
अणुओं-परमाणुओं से
नयी शक्ति पैदा कर
सुखी-समृद्ध सब लोग हो जाएँगे !
दु:ख और क्लेश नहीं शेष रह पाएँगे !
अभी मत बोलो दोस्त,
ऐटम, हाइड्रोजन और सुपर हाइड्रोजन के

परीक्षण करने हैं मुझे !
नये-नये बम भी गढ़ने हैं मुझे !
जिससे इस दुनिया की
शांति और हलचल का,
दु:ख और सुख का
संतुलन टूटे नहीं !
कहना है जो कुछ तुम्हें,
पीछे कह लेना उसे।
ठहरो जी, ठहरो,
मैं प्रयोग कर रहा हूँ अभी !

देखते नहीं हो क्या ?
चारों ओर खतरे ही खतरे हैं !
चाय बेस्वाद है !
घड़ी बड़ी तेजी से चलती है !
हृदय की गति एकाएक रुक जाती है !
व्यक्ति और व्यक्ति में,
धर्म और धर्म में
वाद और वाद में
दंगे हो जाते हैं।
अभी मत बोलो दोस्त,
अभी मत माँगो कुछ।
अभी तो एक ही चीज़ की जरूरत है !
प्रयोग, प्रयोग, प्रयोग.......... !

मन का तार

नभ में कुछ बदली-सी छायी है !
उर पर कुछ भार-सा लगता है !
मन कुछ उदास हो आया है !
शाम नहीं कटती है !
जाने क्यों,
सूरज आज जल्दी नहीं डूब रहा !
जाने क्यों,
घड़ी आज मंद-मंद चलती है !
सोचता हूँ रह-रह कर,
क्या मेरे मन का कोई तार
इनसे भी जुड़ा है ?

ज़िन्दगी की माँग

'ज़िन्दगी माँगती है तुमसे कुछ,
क्या दोगे ?'

'क्या दूँगा !
क्या है शेष मेरे पास !
निर्धन, विपन्न हो चुका हूँ मैं !
कह दो ज़िन्दगी से जा,
और कहीं माँगे वह,
मेरे पास कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं !'

'नहीं, नहीं,
द्वार की भिखारिन को
यों मत निराश करो !
सच है, समृद्ध अगर होते तुम,
देते तुम बहुत उसे !
नहीं रहे कुछ भी पास,
दान अगर दो तब तुम,
ज़िन्दगी भी समझे
कि द्वार पर किसीके वह आयी है !

सोचते हो साथी, क्या ?
क्या दोगे ?
श्रौर कुछ मत दो तुम,
ज़िन्दगी के फटे-चिटे आँचल में
कुछ कण मुस्कानों के रख दो तुम !
सोच रहे तुम शायद,
क्या होगा इन सबसे !
इनसे जो होगा,
वह दुनिया की
श्रौर किसी चीज़ से न संभव है !
कुछ कण मुस्कानों के
जीवन की खेती के
बीज भी, वर्षा भी, खाद भी,
सभी कुछ हैं !
इनसे ही जीवन की फसल लहलहाती है।'

हृदय

फिर कविता !
फिर प्रेम !
फिर स्नेह !
फिर करुणा !
तू नहीं समझेगा ।
हृदय नहीं,
कुत्ते की दुम है तू !
समझाता - समझाता
तुझको मैं हार गया—
दुनिया बहुत टेढ़ी है !
पढ़ ले राजनीति भी,
पढ़ ले गणित भी कुछ !
नहीं तो पग-पग पर ठोकरें खाएगा,
और पछताएगा,
आँसू बहाएगा !
पर तू समझता नहीं !
मालूम होता है,
भगवान् ने तुझको बुद्धि ही नहीं दी है !

क्या जगे हो तुम ?

एक झटका लगा,
खिड़की खुली ।
मैंने झाँक कर देखा,
कहीं कोई नहीं था ।
छिप गया क्या चोर
खिड़की खोल कर के ?
पर वसंती पूर्णिमा की चाँदनी में
छिप सकेगा क्या ?
हुआ मैं चकित,
तब तक खिलखिलाहट हुई–
'चोर है वह चाँद !
देखो किस तरह वह मुस्कुराता है ।'
'और, तुम हो कौन' ?—
मैंने चौंक कर पूछा ।
मिला उत्तर—
'हवा हूँ ।
देखती थी खिड़कियों को खोल कर मैं
सो गये हो या जगे हो तुम !

दर्द

दर्द !
हाँ, थोड़ा-सा और दो !
बिजली-सा मन में कुछ कौंध रहा !
चेतना शायद है जग रही !
अपने को, तुमको, सब चीज़ों को
कुछ-कुछ हूँ मैं अब पहचान रहा !
दो घूँट और दो,
होश में शायद मैं जल्दी ही आ जाऊँ !

भूल-सुधार

भूल होती है, तुम्हारी भृकुटि चढ़ती है,
किंतु मेरी भूल का होता न तनिक सुधार !
मैं गया होता सुधर अब तक कभी,
मिल सका होता तुम्हारा स्पर्श, मधुमय प्यार !

कुछ क्षण तो जी ले

वाह रे सहनशील !
घड़ी की सुइयाँ ये
टिक्, टिक्, टिक्
तेरी छाती में
कीलें हैं ठोक रही !
साँसें घुटती हैं,
बंद धड़कनें होती हैं,
फिर भी तू मूक, निःशब्द बना
सहता जाता है सब !
सहनशीलता है यह ?

शक्ति, धीरता है यह ?
मैं तो कुछ और ही कहता हूँ !
इससे शहीद नहीं होगा तू,
सस्ते ही जान चली जाएगी !

उठ रे, उठ
ओ जीवन के आकांक्षी,
घड़ी की बाँहें मरोड़ दे,
सुइयों से रुद्ध द्वार

निस्सीम काल के तोड़ दे !
और,
निस्सीम आकाश में साँस ले !
चाँद औ' सितारे
जो रस बरसाते हैं,
उसको भी पी ले तू !
जीने आया है बंधु,
कुछ क्षण तो जी ले तू !

भावना का बाँध

बाँधो, बाँधो, बाँधो
अपनी भावना की कोसी को,
नहीं तो डुबो देगी
ज़िन्दगी की बस्ती को !
शेष कुछ बचेगा नहीं !
बुद्धि और चिंतन की
ईंट और पत्थर से
बाँधो इस धारा को,
नहरें निकालो,
सींचो जीवन की धरती को !
पौधे उगें,
लहलहाएँ,
फूलें-फलें,
हँसें-गाएँ,
और, तुम अपनी मचान पर बैठे
लो तान किसी बिरहा की !

दो अक्टूबर

युग के अंधकार को सहसा
चीर आज मुस्कुरा उठी है
एक बुझे दीपक की बाती !
आज पुण्य का महापर्व यह !
मानवता की दिव्य ज्योति का उदय-काल शुभ !
इतिहासों के फेन उगलते
रक्त-सिंधु का
अनुपम श्वेत द्वीप यह पावन !
लहूलुहान हुई गाथाओं के
जलते रेगिस्तानों का
हरा-भरा ओएसिस श्यामल !
बापू का यह जन्म-दिवस है !
मानवता की
अथक शक्ति का मूर्तिमान क्षण !

जिस क्षण आँख खुली धरती की,
उस क्षण से ही
काला प्रेत पाशविकता का
करने लगा ध्वंस का नर्त्तन !
मानवता भी लगी चलाने

सँभल-सँभल कर
गौतम, ईसा, पैगंबर,
अगणित संतों के तीर तीक्ष्णतर !
प्रेत पराजित हुआ नहीं पर।
रक्त-पिपासित बना
गरजता रहा सदा वह,
फूत्कारों से
सतत छोड़ता अग्नि-शिखाएँ,
पदचापों से
युद्ध, क्रांतियाँ, प्रलय असंख्यक !
और, अंत में
मानवता ने
अपनी सारी शक्ति जोड़ कर
ऊनविंश की क्रूर सदी में
अपना तीखा तीर बना कर गाँधीजी को
महादैत्य के वक्षस्थल पर चला दिया था !
गूँज गयी प्रत्यंचा की टंकार विश्व में—
'मानवता यह अब तक तनिक नहीं हारी है।'
धरती-अंबर,
पर्वत-सागर,
बोल उठे सब—
'मानवता यह अब तक तनिक नहीं हारी है।'
बापू का यह जन्म-दिवस है !
मानवता की
अथक शक्ति का मूर्तिमान क्षण !

आज विजय-क्षण !
मानवता की अमर ज्योति का
विश्व कर रहा शत-शत वंदन,
यद्यपि नीचे रक्त-महांबुधि
अब भी फेनोच्छ्वसित हो रहा !
टैंकों और मशीनगनों के चलने से
धरती कंपित है !
हैं उगल रहे इस्पात-प्रेत
शत-शत गोले,
विध्वंसक बम !
हैं ताक रही
लंबी आँखोंवाली बंदूकें हत्यारी !
ऊपर नभ में मँडराते हैं
अगणित यानों के
व्याल पक्षधारी विषाक्त !
आशंका से भयभीत, क्षुब्ध, हतवाक् बनी
मानवता अपनी साँस रोक कर बैठी है !
लेकिन, फिर भी

इस पुण्य पर्व के अवसर पर
संसार आज है चढ़ा रहा
श्रद्धा के पावन मधुर फूल
मानवता के बापू के
चरणों पर खुल कर !
मैं देख रहा आश्चर्यचकित
पूजन का अनुपम समारोह !

संसार पूजता है
अब भी आदर्शों को,
इसलिए अभी मानवता में
विश्वास बनाये रखता हूँ ।

तीस जनवरी

यह तीस जनवरी की संध्या!
निस्सीम काल के
गिरजाघर का क्रास-चिह्न!—
जिसके सम्मुख आनेवाले वत्सर
कुछ क्षण हो शांत, मौन
श्रद्धा से शीश झुकाएँगे!
फिर चल देंगे
धीरे-धीरे कहते-सुनते
बापू की अमर कथाओं को!
गाएँगे कुछ पल कंठ खोल
प्रार्थना-गान,
गाते थे नित बापू जिनको!
माँगेंगे अल्ला-ईश्वर से
वह दान सभी की सन्मति का,
बापू जिसको माँगते हुए
इस धरती पर से चले गये!
वाणी-वाणी से फूटेगी
'रघुपति राघव' की अमर गूंज,
जो आसमान में घहराते

यानों के घनरव में जा कर खो जाएगी,
हो जाएगी पल में विलीन
परमाणु बमों के लिए व्यस्त
मिल के पहियों के घर्घर में !
सदियाँ बढ़ती ही जाएँगी,
बापू के चरणों पर सदैव
श्रद्धा के फूल चढ़ाएँगी !
लेकिन ऊपर आकाश सदा
गूँजता रहेगा कटु रव से,
नीचे धरती चीत्कार सुनाती जाएगी
मोटर, टैंकों, मशीनगनों की
चोटों से आहत हो कर !
पत्रों में छपते जाएँगे—
'हम शांति चाहनेवाले हैं,
हम शांति-हेतु सब कुछ करने को तत्पर हैं !
हम शांति-हेतु
ऐटम बम भी बरसाएँगे !'
बापू की प्रतिमा इसे देख मुस्काएगी !
यह तीस जनवरी
घूम-घूम सदियों के सम्मुख आएगी !'

यह तीस जनवरी की संध्या !
बापू ने महाप्रयाण किया
निज आदर्शों की भेंट डाल
इस तीस जनवरी की संध्या के अंचलमें !

यह बापू के आदर्शों की जाग्रत प्रतिमा !
मानवता की प्रज्ज्वलित स्वर्ण की दीपशिखा !
है देख रही हतवाक्, मौन—
संसार तुला है इसे बुझाने पर
अपने कृत्यों के झंझावातों से !

आदमी और आदर्श

कह रहे तुम—
काव्य रच कर बुद्ध-गाँधी पर,
फूल शब्दों के चढ़ा कर चरण पर उनके,
पूजता हूँ आदमी को मैं ?
धन्य हो तुम !
धन्य है सचमुच तुम्हारी बुद्धि !
आदमी-आदर्श के भी भेद को
बिलकुल नहीं पहचानते हो ।
आदमी वह,
जो भटकता, भूलता-फिरता अँधेरे में,
किंतु है आदर्श वह,
जो रोशनी ले रास्ता उसको दिखाता है !
आदमी वह,
जो तनिक भी ठोकरें खा कर
लुढ़कता, गर्त्त में गिरता,
किंतु है आदर्श,
जो उँगली पकड़ उसकी
उसे ऊपर उठाता है !
आदमी वह,

जो समय के साथ ही है धूल बन जाता,
किंतु है आदर्श वह,
जो काल की चट्टान पर भी
चिह्न अपने छोड़ जाता है !
दोस्त, समझो,
आदमी-आदर्श में कुछ फ़र्क़ होता है !

बुद्ध-गाँधी को स्वरों में बाँध कर निज,
फूल-मालाएँ पिन्हा कर
उन्हें नव-नव छंद के कुछ
पूजता हूँ सत्य को, विश्वास को,
तप-त्याग को,
प्रेम मैत्री को, महत् आदर्श को मैं,
जो कि इनके प्राण में
साकार हो कर बस रहे हैं !
आदमी हूँ,
और, वह भी आज की विंशति शती का !
गहन सागर में विषैले धुएँ के
डूबा हुआ हूँ !
घुट रही है साँस,
लेकिन हाथ निज ऊपर उठाये
कह रहा हूँ—
'आदमी आदर्श पर ही जी रहा है !
बचा सकता है उसे आदर्श ही कोई !'

प्रश्न और ज़िन्दगी

नहीं, नहीं,
उत्तर नहीं,
प्रश्न दो,
उत्तर तो मैं दूंगा !
ज़िन्दगी चाहता हूँ,
ज़िन्दगी मैं लूँगा !

मैं कभी चुकूँगा नहीं !

मिट्टी का दीप मैं नहीं हूँ अब,
हवा का हल्का-सा झोंका भी
कर दे प्रकंपित जिसे,
सहमी, सशंकित-सी लौ जिसकी
कहे ज़रा धीरे से—
'बंद करो द्वार,
बंद कर दो वातायन सब,
आता है झोंका,
दो आँचल की ओट मुझे।'
मैं हूँ वह दीप नहीं !
शांत, स्निग्ध शयन-कक्ष छोड़ मैं
खड़ा हूँ यहाँ, संघर्षों की सड़क पर अब,
मुक्त सब दिशाओं से !
मुझको आघातों का
कोई भय नहीं रहा !
चलती है हवा, चले,
बहें आँधियाँ खुल कर,
मेरी लौ तनिक भी न काँपेगी !
प्रति क्षण निर्भीक बना जलता हूँ,

जलता ही जाऊँगा,
मैं कभी रुकूँगा नहीं !

मिट्टी का दीप मैं नहीं हूँ अब,
अग्नि-शिखा जिसका कर देती है रिक्त कोष,
वर्त्तिका जिसकी
बन जाती है राख एक चुटकी भर !
मैं हूँ वह दीप नहीं,
क्षण-क्षण पर चुक-चुक जो जाता है !
मेरे उर में अक्षय विद्युत्-प्रवाह है !
मेरी शिखा जलती है, जले सदा,
राख नहीं होगी कभी,
होगा यह प्रवाह नहीं शेष कभी,
औ' कभी चुकेगा नहीं !
मैं कभी चुकूँगा नहीं !

तार खिंचा जाता है

जाते हो,
तार खिचा जाता है !

एक छोर मेरे पास,
दूसरा छोर संग अपने
लिये जाते हो !
तार खिचा जाता है !

पलकें भींगी हैं,
होंठ कंपित, पर शब्दहीन,
वाणी भी मौन,
किंतु तार झनझनाता है !
जाते हो,
तार खिंचा जाता है !

चलते जाग्रोगे,
तार खिचता चला जाएगा,
सीमाहीन, अंतहीन !

मोड़, चौराहों, भीड़,
उलझी हुई गलियों से
मुड़ते हुए जाओगे,
तार पर मुड़ेगा नहीं !
तिरती है इस पर जो धड़कन,
वह तिरेगी सदा,
उर का विश्वास यही गाता है !
जाते हो,
तार खिंचा जाता है !

क्या दूँ तुम्हें ?

अश्रु भी नहीं अपने,
अपनी मुस्कान नहीं !
लगता है,
अपना अब शेष नहीं है कुछ भी !
आह, दूँ तुम्हें क्या मैं ?
संघर्षों की तुला पर
ज़िन्दगी ही तुली जाती है !

प्रगति !

जो हाँ,
शिवि औ' दधीचि नहीं,
उनकी संतान हूँ !
उनसे आगे जाना
मेरा पावन कर्त्तव्य है !
अपने प्राण दे कर मैं
दूसरों की प्राण-रक्षा
कभी नहीं कर सकता !
प्राण, आह !
प्राण ही पर दया-धर्म निर्भर है !
चला गया प्राण ही तो,
जग का उपकार क्या करूँगा खाक़ ?

गीत चाहिए

है कोई खुदा का बंदा,
जो मुझे एक गीत दे दे ?

सच कहता हूँ बाबा,
बहुत भूखा - प्यासा हूँ !
कई दिनों से
मेरा कंठ भी सूखा है,
अधर भी सूखे हैं !
एक गीत माँगता हूँ,
कंठ को जिससे मैं
अपने भिगा सकूँ,
प्राणों में जिससे मैं
शीतलता ला सकूँ !
है कोई दाता,
जो मुझे एक गीत दे दे ?

मुझको दुत्कारो मत !
सदा मैं ऐसा ही नहीं रहा !
वे भी कुछ दिन थे !
मैं गीतों का राजा था !

गीतों के महल थे
मेरे पास आलीशान!
गीतों से मेरी तिजोरियाँ
थीं भरी हुई!
किंतु, आह!
दंगे हुए, आग लगी,
गीत लुटे, जल गये!
और, मैं दर-दर की
ठोकरें खाता हूँ घूम रहा!
आह, बिना गीतों की ज़िन्दगी
मुझसे उफ, जिया नहीं जाता है.
एक गीत दे दो बाबा!
एक गीत दे दो मुझे!
ईश्वर करेगा भला!

जी नहीं,
पैसे नहीं लूँगा मैं!
सच कहते हो तुम,
पैसों से गीत मिल सकते हैं,
जैसा मैं चाहूँ, खरीद ले सकता हूँ!
लेकिन मुझे माफ करो!
मुझको बाज़ारू गली-कूचे के
गीत नहीं चाहिए।
गीत बेचनेवाले
दुनिया में बहुत हैं!

लेकिन खरीद-बेचवाले इन गीतों से
प्यास न बुझेगी मेरी !
पैसे मत दो बाबा,
स्नेह से सरस,
सद्भाव से भरा
एक गीत ही दे दो मुझे !
छोटा - सा गीत,
जो अधरों पर आये,
मेरे कंठ को भिगाये,
प्राणों में नयी शक्ति, नवजीवन लाये,
मेरे तन - मन को
गति, स्फूर्त्ति, आशा - उमंग दे जाये !

क्या कहते हो ?
तुम्हारे पास भी गीत नहीं ?
तुम्हारे गीत भी
दंगों में लुट गये, जल गये ?
शायद सच कहते हो !
यहाँ सभी लोग यही कहते हैं !
लेकिन क्या इतनी बड़ी दुनिया में
छोटा - सा एक गीत
मुझको मिलेगा नहीं ?

है कोई खुदा का बंदा,
जो मुझे एक गीत दे दे ?

स्मृति के क्षण

[एक]

रास्ता वही है,
और चलने का ढंग वही,
संग तुम नहीं हो,
कुछ काँटे चुभ जाते हैं !

[दो]

तुम बड़ी शैतान हो
गुज़रे दिनों की याद !
मैं खुशी से गुनगुनाता
देखता हूँ
सामने के मुस्कुराते फूल !
किंतु, तुम जाने न क्यों,
मुझको चिकोटी काट लेती हो !
क्या मज़ा मिलता तुम्हें,
मुझको नहीं मालूम !
तुम बड़ी शैतान हो
गुज़रे दिनों की याद !

प्यास

[एक]

जाग कर मेरे हृदय की प्यास
मुझसे कह रही है—
'तू अभी भी जी रहा है!'
बेकली में भी कसकती प्यास को मैं
प्यास की आवाज़ से खुश हो रहा हूँ !

[दो]

दूर है शैवालिनी, क़िस्मत मना तू,
खोज में उसकी सतत बढ़ता चला चल !
प्यास तुझको ज़िन्दगी देगी हमेशा,
तृप्ति का जल किंतु, तुझको राख कर देगा !

भगवान बचाये

[एक]

तुम कहते हो, मैं भ्रम में बढ़ता जाता हूँ ?
यह छलना है, जो मुझको सतत चलाती है ?
भगवान बचाये मुझे तुम्हारे सत्यों से,
जो चरणों की गति छीन उन्हें दें पंगु बना !

दो]

क्या कहा कि मैं हूँ भाग्यवान, मिल गया लक्ष्य ?
मैं बैठ यहाँ पर जीवन भर विश्राम करूँ ?
भगवान बचाये मुझको ऐसी मंज़िल से,
जिसके आगे कोई मंज़िल हो और नहीं !

फोटो

नहीं, नहीं,
मुझे अपने फोटो की
कोई ज़रूरत नहीं !
चेहरा अपना मैं
देख कहीं लूँगा
किसी शीशे में
किसी नदी, निर्झर, तालाब के
साफ झलमल पानी में,
किसी की चमकती हुई आँखों में !
दुनिया में इन सबकी कमी नहीं !
कैमरा है पास में तुम्हारे अगर,
फोटो अगर चाहते हो खींचना ही,
एक तस्वीर मेरी आत्मा की
खींच कर दे दो मुझे !

आस्था

नहीं, नहीं,
मैं अभी मरूँगा नहीं !
ज़िन्दगी भी क्या कहेगी—
कैसा दग़ाबाज़ था !

टूटा हुआ आदमी

बड़ी - बड़ी मशीनें
तनिक टूटने पर ठप होती हैं,
बड़ी - बड़ी ट्रेनें
एक पुर्ज़ा चुक जाये, रुक जाती हैं,
बड़े - बड़े यान
अस्त - व्यस्त तनिक होते ही
अपनी उड़ान भूल
धरती पर जड़वत् हो जाते हैं,
किंतु यह विचित्र बात
देखता हूँ सामने मैं,
टूटा हुआ आदमी भी चलता है!

टूटा हुआ आदमी चलता है,
शायद इसलिए कि कहीं जाग उठे
अंतर का वैज्ञानिक,
और,
आदमी फिर से जुड़ जाये!
टूटा हुआ आदमी चलता है,

शायद इसलिए कि ट्रेन, यान, मशीनों - सा
उसको अपेक्षा नहीं,
आये कोई, आ कर चला दे उसे!
उसको चलानेवाला
उसमें ही सोया है!
इसीलिए शायद
यह टूटा हुआ आदमी
रुकता नहीं, चलता चला जाता है!